UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182251

UNIVERSAL
LIBRARY

हल्दीघाटी की एक रात

ले०

श्री शिशुपालसिंह जी 'शिशु'

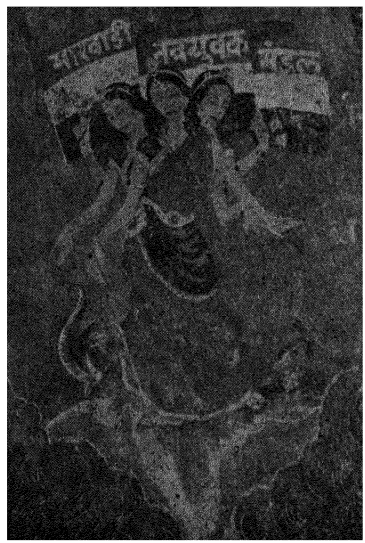

सं. २००२ वि०

प्रकाशक:—
मारवाड़ी नवयुवक मंडल
मारवाड़ी बाज़ार
हैदराबाद (दक्षिण)

प्रथम संस्करण
१५००
मूल्य ।।।)

मुद्रक:—
बुलैटिन प्रेस
सिकन्दराबाद (दक्षिण)

हिन्दी-हितैषी

श्रीमान् राजा गोवर्धनलाल जी पित्ती

की

सेवा में

सादर समर्पित

—'शिशु'

भूमिका

कविवर श्री शिशुपालसिंहजी 'शिशु' की रचना "हल्दीघाटी की एक रात" आपके सम्मुख है। स्पष्टवाद की धारा में कवि ने यह दूसरा स्रोत प्रवाहित किया है। वीर केशरी महाराणा प्रतापसिंह के इस चित्रण में कवि की तूलिका ने कतिपय ऐसे आकर्षक रंग भरे हैं कि चित्र बोल उठा है। भारतीय स्वतन्त्रता के अमर पुजारी महाराणा के प्रति श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के साथ कवि ने उनकी स्वच्छ राजनीति का सरल विवेचन भी मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

हल्दीघाटी का यह इतिहास-प्रसिद्ध युद्ध ज्येष्ठ शु. २ सम्वत १६३३ वि. को हुआ था। तब से अबतक इस युद्ध की स्मृति भारतीय हृदयों में अंकित है। कवियों के हृदयों में इसे प्रवाहित करने में यह युद्धस्थल सदैव अग्रणी रहा है तथा यत्र-तत्र इस विषय पर फुट छन्द बहुधा देखे जाते है। श्री. श्यामनारायणजी पाण्डेय ने तो "हल्दीघाटी" महाकाव्य ही रचा है। इस चिरस्मरणीय घाटी पर इतना साहित्य होते हुए भी सुकवियों को नवीनता दिखाने का अवसर मिल ही जाता है। 'शिशु'जी ने महाराणा का ओजस्वी युद्ध आह्वान तथा एक राजपूत सैनिक का स्वप्न उपस्थित कर अपनी कल्पना की मौलिक उड़ान का उत्तम उदाहरण सामने रखा है।

हल्दीघाटी राजपूताने में नाथद्वारे से अनुमानतः ११ मील दक्षिण-पश्चिम में है। गोगून्दा और खमणौर के बीच विकट पर्वत

श्रेणियों में एक तंग रास्ते वाली घाटीको हल्दीघाटी कहते हैं। यहा की मिट्टी हल्दी जैसी पीली है तथा पत्थर भी पीली मिट्टी के संसर्ग से पीले ही दिखाई देते हैं। इसी कारण इसका नाम हल्दीघाटी पड़ा है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने उदयपुर के इतिहास में इस घटना का वर्णन किया है। अकबर जब गुजरात का विद्रोह शान्तकर दिल्ली लौटने लगा तो उसने मानसिंह के साथ बहुतसी सेना देकर यह आदेश किया कि जो अधीनता स्वीकार करे उसका सम्मान किया जाय और जो ऐसा न करे उसे दण्ड दिया जाय। मानसिंह राणा को समझा बुझाकर अधीनता स्वीकार कराने के निमित्त वि. स. १६३० आषाढ में उदयपुर आए। राणा ने उनका बहुत सम्मान किया। विदा होते समय राणाने एक भोज दिया जिसमें वे स्वयं नहीं पधारे। उन्होंने अपने पुत्र अमरसिंह को भेज दिया। जब मानसिंह ने राणाको बुलवाया तो उत्तर मिला कि उनके पेट में दर्द है। मानसिंह ने इस में अपना अपमान समझा। वे क्रोधित होकर लौट आए और अकबर से सब हाल कहा। अकबर ने राणा से युद्ध करने के लिए मानसिंह के ही नेतृत्व में सेना भेजी।

इस युद्ध में अकबर का आश्रित इतिहासकार अलबदायूंनी (मुन्तखबुत्तवारीख का लेखक) भी उपस्थित था। उसने अपने इतिहास में युद्ध का आंखों देखा वर्णन लिखा है। उसके लेखानुसार मानसिंह के पास ५००० और राणाके पास ३००० सैनिक थे।

राणाकी सेना के एक भाग के संचालक हकीमखाँ सूर अफ़गान थे। हिन्दू राजाओं के अतिरिक्त कई मुसलमान सैनिक-सरदार भी राणा के साथ थे।

राणा का अकबर के विरुद्ध युद्ध साम्प्रदायिक न था। महाराणा साम्राज्यवाद के कट्टर शत्रु थे। राणा प्रताप का प्रतिद्वन्दी "मुसलमान" अकबर न था अपितु "सम्राट" अकबर था।

यदि अकबर की कूटनीति से अनेकों लोलुप हिन्दू उसकी ओर थे तो राणा प्रताप के उच्चादर्श से प्रभावित होकर अनेकों मुसलमान सरदार व सैनिक राणा की ओर थे। वास्तव में राणा का दृष्टिकोण जाति पांति की सीमा से बहुत परे था। वे प्रत्येक जाति के सत्पुरुष का आदर-सम्मान करते थे।

कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण में काव्य की अमर आत्मा प्रविष्ट करदी है। कवि का ध्येय उपक्रम में कल्पना के आव्हान से स्पष्ट है। संध्या के आगमन का सफल चित्रण कर राणा के मन की दशा को बड़े कौशल से सामने लाया गया है। प्रजातन्त्र और साम्राज्यवाद की तुलना कितनी सरल और स्पष्ट है :—

.... "एक ओर था 'प्रजा' शब्द का
अर्थ 'प्राण से प्रिय सन्तान'
एक ओर था 'प्रजा' शब्द का
अर्थ 'चूसने का सामान'

स्थल स्थल पर प्रकृति के साधारण व्यापारों को सकारण बतला कर कवि ने उनमें सजीवता भर दी है :—

"गुप्त-भेदिये-सा फिरता था
लुकता छिपता मन्द पवन"

"उन्नत विटपों ने 'हाँ' सूचक
सम्मति दी कुछ हिल हिल कर"

राष्ट्रीय कवि ने साम्प्रदायिक संकीर्णता के विरुद्ध जो उद्गार व्यक्त किए हैं वे स्मरणीय हैं :—

"एक गगन की छत के नीचे
एक धरापर कर के वास
एक हवा में सांसें लेकर
पाते हैं समान उल्लास
परम पिता है एक, उसी की
कहलाते हैं सब सन्तान
फिर हृदयों में भिन्न-भावका
कैसे हो सकता है भान"?

स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध-अधिकार है इसका समर्थन इन पंक्तियों में देखिए :—

"नभ व्यापक है, अग्नि तेज-युत
पवन बिना रोक बहता है
धरती मस्त घूमती है, जल

'कल-कल' कहता रहता है !
जब प्रत्येक तत्व अपने में
सुख से सदा स्वतन्त्र रहे
तो फिर पंच-तत्व का पुतला
क्यों जग में परतन्त्र रहे ?"

ईसा मसीह का कथन Hate the sin but love sinner की इन पंक्तियों में कितनी सुन्दर झलक है :—

" मैं पापीसे नहीं, पापसे
भाव घृणा के रखताहूं "

कवि की सर्वथा मौलिक उपमाएं विशेषतः आकर्षक हैं :—

....."अकबर का झंडा बुढ़िया के
दाँतों-सा हिल जाएगा " .....

.....अर्द्ध-विराम कटारों के हों
भाले पूर्ण-विराम बनें " .....

महाराणा के उद्बोधन का सैनिकों पर जो प्रभाव पड़ा उसे कविने बड़े सरस ढंग से व्यक्त किया है :—

....." केवल आप सनिक हाँ कर दें
झट तलवार निकालें हम " ... ...

में उत्साह अपनी चरम सीमापर पहुंच गया है।

महाराणा के चरित्र की उज्वलता, उनकी स्वच्छ राजनीति यहाँ स्पष्ट है :—

.....''सोतों पर हथियार उठाना
दुरुपयोग है जागृति का''.....

सैनिकों का पहरा स्वयं लगाने में महाराणा की प्रजा–वत्सलता का परिचय मिलता है। राजपूतों में कितना आवेश था उसका पता नव-युवक राजपूत के 'स्वप्न' में मिलता है।

शान्ति और क्रान्ति की तुलना दीपक और शलभ के जलने में निहित है :–

''देखो जहाँ दिया जलता है
वहाँ शलभ भी जलते हैं
इस प्रकार दोनों ही अपने
अग्नि–मार्ग पर चलते हैं
शलभों का आवेश उबल कर
पल भर में जल जाता है
दीपक का जलना प्रभात तक
ज्योति लिए चल जाता है''

समस्त रचना आधुनिक युगकी आवश्यकताओं और पुकारों से उत्प्राणित है। मातृ–भूमि तथा देश के प्रति कर्तव्य पालन में कितना त्याग, कितनी तपस्या और कितना बलिदान आवश्यक है इस का पता हमें '' एक रात्र'' की प्रत्येक बात से मिलता है। अपनी इन विशेषताओं के कारण रचना नवयुवकों का कंठहार होगी। शुभम्।

हैदराबाद द.
सं. २००२

बद्रीविशाल पित्ती 'विशारद'

उपक्रम

विमल-कल्पने! आओ अपने
उस अतीत की ओर चलें
जिस की परमोज्ज्वल इच्छायें
रवि-किरणें बन कर निकलें
मुरझाये मानस के शतदल
एक बार फिर खिल जायें
मधुपों की प्यासी चाहों को
मधु की बूँदें मिल जायें।

भूतकाल गत हो हो कर, है
पीछे को जाने वाला
और भविष्य अतिथि-सा बनकर
आगे है आने वाला
दोनों के संगम की संज्ञा
वर्तमान ने ही पाई
चलो वहीं पर चित्र बना दें
एक मनोरम सुखदाई :—

जिसमें एक स्वतन्त्र शूरमा
सहे न बन्धन के सन्ताप
पराधीनता के विरुद्ध हो
रण का बाना धारे आप
कंठ-देश में पैनी वाणी
कर में हो पैनी तलवार!
अंग अंग से झलक रहा हो
पीड़ित मानव का उद्धार।

"करमिट या मरमिट" के प्रतिनिधि
उस का साथ निभाते हों
समराङ्गण के आमंत्रण से
क्षण क्षण में उमँगाते हों
सपनों में भी वे साहस से
अरि के सम्मुख अड़ते हों
वेमुख होने पर भी उन के
हाथ मूँठ पर पड़ते हों।

हल्दीघाटी
की
एक रात

दिन का चौथा पहर, आयु के
चौथेपन सा बीत गया
विश्व-भवन का विस्तृत-प्राङ्गण
विशद-प्रभा से रीत गया
केवल कुछ पीलापन पा कर
पश्चिम में नभ फूल गया
'हल्दीघाटी' कहलाने को
सारी सुध-बुध भूल गया।

दो पंखों से नभ में चारों
ओर भ्रमण करने वाले—
खग नीड़ों में निद्रित-से थे
स्वर पर नीरवता डाले
सन्ध्या तक उन्नत-विटपों से
करते रहे हृदय की बात
मौन हो गये थे अब अपना
दूर जान कर अरुण-प्रभात।

ऊँचे नीलम के छज्जे पर
झाँक रहा था ध्रुव तारा
तारे अपलक हेर रहे थे
नीचे का नाटक सारा
वन के कोलाहल पर फैली
गुप चुप धुँधली अँधियारी
पर, घाटीके एक पार्श्व में
मची रही हलचल भारी।

यों तो है यह नियम कि दिन भर
किया जाय संयम से काम
और रात्रि के समय शान्त-चित
हो कर, किया जाय विश्राम
क्यों कि निशा दैनिक-नाटक का
पटाक्षेप कहलाती है
थके पात्र के सुस्ताने को
कुछ अवसर ले आती है।

किन्तु आज उस 'कुछ' अवसर में
कैसी शान्ति? कहाँ की शान्ति?
प्रण पर सब कुछ बलि करने को
तुली हुई थी भीषण-क्रान्ति
एक ओर माँ का प्रताप था
एक ओर माँ का अपमान
एक ओर देशाभिमान था
एक ओर पद का अभिमान।

एक ओर अकलंक-पुरुष था
एक ओर अति गर्हित पाप
एक ओर उन्नति का वर था
एक ओर अवनति का शाप
एक ओर सब कुछ देकर था
अपनी आनबान का ध्यान
एक ओर टुकड़ों के ऊपर
बिके हुये थे तन-मन-प्राण।

एक ओर जन-तंत्र-वाद पर
संकट आने से था क्षोभ
एक ओर साम्राज्य-वाद को
विस्तृत करने का था लोभ
एक ओर था 'प्रजा' शब्द का
अर्थ 'प्राण से प्रिय सन्तान'
एक ओर था 'प्रजा' शब्द का
अर्थ 'चूसने का सामान'।

या यों कहो कि एक ओर था
मर्यादा-पालन का भार
एक ओर था वंश लीक पर
उच्छृङ्खलता का व्यापार
एक ओर था उदर-शूल से
भोजन करना अस्वीकार
एक ओर दिल्ली से औषधि
लाने का था व्यंग्य विचार।

प्रेत-दीप के तुल्य दूर पर
दिये टिमटिमाते-से थे
जलती बुझती आशा ले कर
विकल लड़खड़ाते-से थे
उन के ही धुँधले प्रकाश में
मानसिंह के डेरे थे
जिन की सैना में अकबर के
रण-सैनिक बहुतेरे थे।

अरि की ईंटों का प्रत्युत्तर
पत्थर से देने वाले
राजपूत कैसे चुप रहते
नित लोहा लेने वाले
जुड़ते आते थे राणा के
संरक्षण में दल के दल
इसी लिये तो मची हुई थी
घाटी में भारी हलचल।

अति उदार-चेता नेता के
प्रति उर में सम्मान लिये
उसके प्रण के लिये हथेली
पर अपने प्रिय-प्राण लिये—
केशरिया पागों को बाँधे
रजपूती पहचान लिये—
कोई भाले विकट सँभाले
कोई तीर कमान लिये।

कोई पैने फरसे तोले
कोई तीक्ष्ण-कटार लिये—
कोई तीव्र दुधारे, कोई
दामिनि-सी तलवार लिये—
योद्धा-गण चलते आते थे
ले कर अपने दल के दल
इसी लिये तो मची हुई थी
घाटी में भारी हलचल।

यद्यपि उनके तन ऊपर से
वीर-वेश थे किये हुये
पर, मन मातृ-केतु के प्रति थे
अमित नम्रता लिये हुये
पहले केशरिया-ध्वज को सब
करते थे प्रणाम सविनय
फिर गद्‌गद् हो कह उठते थे
'हिन्दू-पति राणा की जय'।

उदयसिंह के लाल सभी का
स्वागत करते जाते थे
मुसकाते भावों से सब के
मन को हरते जाते थे
उन की इच्छा के इंगित पर
कोलों भीलों का सरदार
'पूंजा' दल-बल से करता था
आगन्तुक-दल का सत्कार।

यद्यपि भोजन के आयोजन
में था सभी प्रकार सुयास
पर माँ के जाये सिंहों को
कैसी भूख? कहाँ की प्यास?
सब की यमुनायें, राणा की
गंगा में मिल जाती थीं
कपिल-कोप के प्रतिशोधन को
पल पल में उमंगाती थीं।

पूज्य पताका, पता उच्चता—
का दे कर फहराती थी
भूतल पर नव्वे-अंशों का
सीधा कोण बनाती थी
झुकना कैसा? अपना ऊँचा
शीश लिये पुलकाती थी
'फर फर' उड़ने में वैरी के
मानो होश उड़ाती थी।

रण को तीर्थ जान कर जो जो
सुभट वहाँ थे जुड़ आये
अपने अपने घट में वे सब
अमर-शौर्य-रस भर लाये
उन में कोई विघ्न-मक्षिका
गिर कर कहीं न करे विकार
इस से अपने अंचल को वह
डुला रही थी बारम्बार।

सब ने भाले गाड़ गाड़ कर
अपने घोड़े बाँध दिये
मानो विजय-खम्भ के सुन्दर
सगुन सभी ने साध लिये
फिर अपार उत्साहित हो कर
बैठ गये सैनिक, सरदार
लगा महाराणा का, गिरि की
चोटी के ऊपर दर्बार।

गुप्त-भेदिये-सा फिरता था
लुकता छिपता मन्द पवन
पर इस से रण-दूल्हा को क्या,
मन्द पवन हो या कि यवन
उन की सार्वजनिक-बातों को
कोई भी आकर सुन ले
यदि न बुद्धि से असहयोग हो
तो कुछ शिक्षा भी गुन ले।

प्रण-सी अविचल एक शिला पर
वे वीरासन बैठ गये
पहले शान्ति लिये कुछ क्षण को
अपने मन में पैठ गये
फिर सब के सम्मुख मानस के
मानचित्र को खोल उठे
राज-स्थानी नर-सिंहों को
सम्बोधन कर बोल उठे :—

"वीरो! सर्व-प्रथम जो तुम को
याद गई थी दिलवाई
आज अवश्यम्भावी बन कर
सम्भावना वही आई
उस दिन मैंने मानसिंह के
संग न जो भोजन पाया
रण-चंडी को भूख-प्यास का
हेतु वही बन कर आया।

ले कर काले-भाव विपक्षी
दल-बल से चढ़ ही आये
केशरिया-रँग के प्रति अपना
मलिन-हृदय कर ही लाये
दासपने का भार कभी हम
कर सकते हैं वहन नहीं
रहन सहन इस लिये हमारी
उन लोगों को सहन नहीं।

क्रोधित होने से पहले यह
सोच रहा मेरा मानव
मानसिंह का मानव कैसे
हाय! बना निर्दय दानव?
दूध सप्रेम पिया बचपन में
राजपूतिनी माता का
आज रक्त पीने को आया
अपने प्यारे भ्राता का।

कड़वी औषधि को वह अपने
मन में मान गया अपमान
अकबर की लोलुपता को, दे
बैठा बढ़ने का सामान
बढ़िया प्रायश्चित्त भूल का
हो सकता था पश्चाताप
पर उसकी भूलों पर भूलें
देती हैं मुझ को अनुताप।

वही अकेला लड़ने आता
तो मैं उस को समझाता
बार बार की भूलों को फिर
भी सुधार पर ले आता
पर, सँग में साम्राज्य-स्वप्न वह
अकबर का ले आया है
इस से मैं ने विवश प्रलय का
सन्देशा दुहराया है।

अकबर मुसलमान होने के
कारण मेरा शत्रु नहीं
हाँ, सम्राट-रूप में मेरा
हो सकता वह मित्र नहीं
मुझ को जग में मुसलमान क्या
किसी जाति से द्वेष नहीं
शर्त यही है उसके द्वारा
जनता को हो क्लेश नहीं।

क्यों कि जनार्दन में जनता में
मैं ने भेद नहीं जाना
प्रजा जनों की सेवा में ही
प्रभु-पूजन का फल माना
मैं पापी से नहीं, पाप से
भाव घृणा के रखता हूँ
जाति पांति का प्रश्न हटा कर
अन्तःकरण परखता हूं।

मैं हिन्दू हूँ यदि हिन्दू ही
कोई अत्याचार करे
मुसलमान की स्वतन्त्रता का
सुविधा का संहार करे
तो वह मेरा प्रथम शत्रु है
मैं उस से लोहा लूँगा
न्यायोचित-निष्पक्ष-नीतिपर
आंच नहीं आने दूँगा।

जिस प्रकार रजपूतों से या
भीलों से है आस मुझे
उसी प्रकार मुसलमानों से
भी है नित विश्वास मुझे
इसी लिये विश्वास रूप से
अहमदखाँ, अब्दुलगफ्फार
कासिम और हकीम सूर हैं
मेरी सैना में सर्दार।

एक गगन की छत के नीचे
एक धरा पर करके वास
एक हवा में साँसें लेकर
पाते हैं समान उल्लास
परम-पिता है एक उसी की
कहलाते हैं सब सन्तान
फिर हृदयों में भिन्न-भाव का
कैसे हो सकता है भान।

लोलुप स्वार्थों का पूजन कर
भिन्न-भाव उपजाता है
अबलों के शोषण से अपने
पोषण को पनपाता है
दुखियों से सुख का ऋण ले कर
गर्वित शीश उठाता है
हो कर के सम्राट, गगन तक
ऊँचे महल बनाता है।

यह प्रताप कुटियों का प्रतिनिधि
उस से भिड़कर मानेगा
जन्म-मृत्यु के संघर्षण में
अपना सीना तानेगा
धमकी और प्रलोभन का कुछ
मूल्य न मन में जानेगा
ठानेगा उस के विरुद्ध, हाँ
युद्ध सदा वह ठानेगा।

रंगीनी परदों में लगता
हो मीना बाज़ार जहाँ
कामुकता का पातिव्रत पर
लुक-छिप कर हो वार जहाँ
राहु-दृष्टि से शशि-मुख को हो
तकने का व्यवहार जहाँ
अनाचार की जीत जहाँ हो
सदाचार की हार जहाँ।

वहां भयंकर भाला मेरा
बन जायेगा काला नाग
तड़िता-सी तलवार तड़प कर
उगल उठेगी भीषण आग
समर-निमंत्रण के उत्तर में
निश्चय 'हाँ' करने वाला
मेरा हृदय 'किन्तु' बन कर है
कभी नहीं डरने वाला।

वैसे तो मैं रुक जाता, नर—
मेध-यज्ञ से हट जाता
पूर्ण-अहिंसा का व्रत लेकर
दया-मार्ग पर डट जाता
क्योंकि व्यक्ति-गत मेरा दुख, कुछ
दुख न मुझे दे पाता है
हाँ, स्वदेश का दुख देख कर
खून खौल सा जाता है।

अत्याचारी स्वस्थ-राष्ट्र में
रोग बसाते रहते हैं
हो हो कर गलितांग, देह की
कान्ति नसाते रहते हैं
उनको निष्ठुरता से काटे
रक्खे उनमें स्नेह नहीं
"शान्ति" युद्ध की पुत्री है, इस
में कोई सन्देह नहीं।

मैं तो अंग तुम्हारा हूँ जो
भी होगा सच्चा रजपूत
अनाचारियों के भविष्य पर
लाद सकेगा भय के भूत
तुम ने अपने एक एक में
बल अनेक का पाया है
रण-आँगन में खेल खेल कर
माँ का दूध पचाया है।

साहस के दुगुने-से तुम ने
पाये हैं दो दो भुज-दण्ड
कर दो परम-प्रचण्ड शत्रु की
शुण्ड-भुजाओं के शत-खण्ड
उनका शीश कतर कर अपनी
माँ का उन्नत-भाल करो
जी भर कर साँसें लेने को
वातावरण विशाल करो।

दो भाई बाहें पसार जब
आपस में मिल जाते हैं
चतुर्भुजी-शक्ति का तभी हम
सुन्दर-दर्शन पाते हैं
अहा! आज की भाँति जहां पर
बन्धु सहस्त्रों मिल जायें
सम्मुख क्यों न सहस्त्र-बाहु हों
आयें वे मुंह की खायें।

साढ़े तीन हाथ का मानव
रहे पराई मुट्ठी में
अपना स्वाभिमान पिघलावे
अपमानों की भट्ठी में
शोक! शोक! उस नीच नराधम
के तन को मन को धिक्कार
उसने जग में जन्म लिया क्यों
उसके जीवन को धिक्कार।

नभ व्यापक है अग्नि तेज-युत
पवन बिना यति बहता है
धरती मस्त घूमती है, जल
'कल कल' कहता रहता है
जब प्रत्येक तत्व अपने में
सुख से सदा स्वतन्त्र रहे
तो फिर पंच-तत्व का पुतला
क्यों जग में परतन्त्र रहे।

जो सिक्कों पर बिके, यहां वे
सिक्का नहीं जमा सकते
अन्धकार की पूंजी लेकर
किरणें नहीं कमा सकते
धनी भले हों ला न सकेंगे
नव-युग में स्वर्णिम-घड़ियां
सन्तानों को दे जायेंगे
सोने की दृढ़ हथकड़ियां।

रोटी बेटी देकर लोभी
आन भुलाते रहते हैं
जूठन पाने को कुत्ते-सी
पूंछ डुलाते रहते हैं
हो जाते हैं वे स्वदेश के
वीर-वेश के निपट-विरुद्ध
उनके पिता तथा माता को
कौन बता सकता है शुद्ध।

सुनता हूं अकबर-दल, दक्खिन
से जय पाकर आया है
अपने साथ दलित- जनता के
चीत्कारों को लाया है
पर, तन के अधिकारों से मन
पर होता अधिकार नहीं
दानवता की भौतिक-जय में
मानवता की हार नहीं।

हम कम हैं वे अधिक, अस्तु उन
की बढ़ती को करके कम
अपनी कमी बढ़ाने का कुछ
भाव न मन में लाये हम
बढ़ कर स्वयं, स्वावलम्बन से
हमने बढ़ने की ठानी
पर, झपटे हैं आज हमीं पर
जन-संख्या के अभिमानी।

उन्हें बताना है कि सरोरुह
को सर नहीं डुबा पाया
बहराया नित किन्तु द्वीप को
सागर नहीं डुबा पाया
उच्च-ध्येय वाले जब अपनी
परिभाषा न भुलाते हैं
बड़े बड़े पानी वाले तब
उनके चरण धुलाते हैं।

नीच ध्येय वाले घर में ही
घुस घुस कर मर जाते हैं
अन्त समय मरघट पर केवल—
सूखी लकड़ी पाते हैं
हां, जो सुभट समर-सागर को
कमर बांध तर जाते हैं
अमर कीर्ति को पाकर वे ही
अमर-लोक को पाते हैं।

तुम हो शूर, शौर्य का रण में
बढ़ बढ़ कर दो प्रबल प्रमाण
स्वाभिमान को महँगा कर के
सस्ते कर दो अपने प्राण
स्वर्गादपि गरीयसी जननी
जन्म-भूमि का करके मान
पावन कण्ठ-रक्त से लिखदो
भूतल पर "जय राजस्थान"।

शीश झुकाने से पहले ही
वीर यहाँ बलिदान हुए
पीठ दिखाने से पहले ही
शूर यहाँ कुर्बान हुए
उसी तरह राष्ट्रीय-नियम को
दुहरावे मेवाड़ सदा
अपने प्राणों के ज्वारों पर
लहरावे मेवाड़ सदा।

हटो न, छुद्रों की छाती पर
झंडा बन कर गड़े रहो
शोक-बवंडर में अशोक के
शिला-लेख से खड़े रहो
आकुलता में राजस्थानी
आशा के हो केन्द्र तुम्हीं
अपनी प्रजा तुम्हीं हो, अपने
शासक और नरेन्द्र तुम्हीं।

नीचों का पानी उतार दो
आड़े हो कर ढालों से
उन की सभी कुटिलता हर लो
बलखाते करवालों से
हम उनके बढ़ते वाक्यों की
रोक थाम के काम बनें
अर्द्ध-विराम कटारों के हों
भाले पूर्ण-विराम बनें।

निश्चित है जब वार तुम्हारा
अपनेपन पर आयेगा
अकबर का झंडा, बुढ़िया के
दाँतों-सा हिल जायेगा
सभी आततायीपन उस से
हो जायेगा इतनी दूर
पूरब से पच्छिम, उत्तर से
दक्षिण होता जितनी दूर।

यद्यपि मेरे उद्गारों में
कहने को है बात बहुत
पर, तुम लोग थके हो, तिसपर
शेष नहीं है रात बहुत
जाओ, शयन करो, क्या चिन्ता?
सम्मुख हैं उत्पात बहुत
कुछ अन्धेर रहे, उत्तर दे
लेगा अरुण प्रभात बहुत"।

इस प्रकार नर नाहर की सुन
सुन कर रण की हुंकारें
तमक उठीं म्यानों में सब की
भूखी प्यासी तलवारें
सब के क्रोध भरे नेत्रों में
रुद्र-ज्योति चकचौंध गई
दूर क्षितिज पर बिन बादल ही
विद्युत सी द्युति कौंध गई।

बहने लगा पवन, उद्बोधन
के शब्दों में घुल-मिल कर
उन्नत-विटपों ने "हाँ" सूचक
सम्मति दी कुछ हिल-हिल कर
पत्तों के तालों पर कड़खे
गाये ललित लताओं ने
महारथी के सिंहनाद को
दुहरा दिया गुफाओं ने।

सभी सभासद उत्सुकता से
बोल उठे हो हर्ष-विभोर
घन का घोर-घोष सुन मानो
कुहक उठे वन-वन के मोर:—
"महाराज की जय हो; हम सब
सदा आप के ही हैं अंग
जंग लगे हथियार हमारे
कब से चाह रहे हैं जंग।

अभ्यासी सलाम करने के
मानसिंह चढ़ आये हैं
स्वाभिमान की दाह-क्रिया कर
संग मुगल-दल लाये हैं
अनुभव की शिक्षण-शाला में
ले आये अल्हड़ अनुमान
कल समझेंगे जब कि मचेगा
प्रलयंकारी - रण - घमसान

राजस्थानी स्वतन्त्रता का
लेना कोई खेल नहीं
ज्वालामुखियों पर ढक्कन रख
देना कोई खेल नहीं
बर्बर, कोड़ा लिये सर्प का
आवे चढ़ कर नाहर पर
हम उस से भी भिड़ जायेंगे
'महादेव! हर! हर!' कह कर।

पाँच हजार सैनिकों में वे
अपना बहुमत लाये हैं
पर, भेड़ों की भीड़ों से क्या
केहरी कुछ घबड़ाये हैं
एक एक मिल ग्यारह होंगे
हैं यद्यपि हम तीन हजार
साहस का बहुमत, संख्या के
लघु-मत का है शुभ-शृंगार।

सामूहिक सुविधा को हम ने
दे डाली अपनी काया
क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थ, फूट की
ला न सकेगा अब माया
मरने का अवसर आने पर
अलग अलग मर सकते हैं
किन्तु पृथग्गत जीवन-यापन
कभी नहीं कर सकते हैं।

जिस के गिरि-शृंगों में उन्नति
दृढ़ता है पाषाणों में
खड्गों में गम्भीर-भावना
समता है मैदानों में
कण-कण में रण की शिक्षा का
खुला हुआ गुरु-द्वारा है
वह मृगराज-स्थान सरीखा
राज-स्थान हमारा है।

यहीं नहीं, जिस के सिरहाने
चाँदी की दीवाल खड़ी
चरणों पर सोने की लंका
विजय-भावना लिये पड़ी
सिन्धु-सन्तरी जिसका पहरा
देता निशि-दिन प्यारा है
गंगा-जमुनी हार लिये वह
हिन्दुस्थान हमारा है।

आप करें नेतृत्व हमारा
फिर कोई पामर आवे
नासमझी के फल को अपने
लोहू से रँग ले जावे
देव न हो अधिदेव हमारा
और न वह दानव ही हो
हम मानव हैं, अस्तु हमारा
राजा भी मानव ही हो।

चाहे 'अस्ति' 'नास्ति' मिल जायें
एक 'नहीं' 'हाँ' हो जायें
स्वर्ग-मर्त्य या पाप-पुण्य सब
सम-भावों में सो जायें
पर, जिसकी व्याख्या में दूषित
शब्दों की ही हो भरमार
वह दिल्लीश्वर हो या ईश्वर
सन्धि न होगी किसी प्रकार।

हम उसके विरोध में निश्चय
अपनी भुजा उठायेंगे
'वीर-भूमि से दूर हटो' यह
बार बार दुहरायेंगे
यही नहीं, काँटों के उत्तर
बरछों से पहुँचायेंगे
अपनी नौकीली आनों को
हूलों में प्रकटायेंगे।

चुभे हुए शूलों को कब कब
कोमल फूल निकाल सके
उन्हें निकाल सके तो केवल
अपने शूल निकाल सके
अपने लिये एक चींटी को
तापित करना अनुचित है
किन्तु लोक-हित होने में, नर—
मेध-यज्ञ भी समुचित है।

औरों के स्वातन्त्र्य-हरण को
जो दल बल से आते हैं
वे अपनी ही लोलुपता के
दास प्रथम हो जाते हैं
ऐसे लोलुप दासों से हम
कभी नहीं डर सकते हैं
प्राण-प्रसूनों से स्वतन्त्रता
का पूजन कर सकते हैं।

अकबर ने यदि मानसिंह को
ऊँचे पलड़े में तोला
और आप को किसी तरह से
नीचे पलड़े में तोला
तो इस से क्या? किसी तुला में
हलका ही ऊँचा होगा
प्रण में पर्वत-सा अविचल ही
गुरुता से नीचा होगा।

शब्द आप के उष्ण-रक्त बन
खौल रहे हैं नस नस में
क्षमा कीजिये, अब न हमारा
रण-आवेश रहा वश में
श्री गणेश हो जाय समर का
हो मुठभेड़ों के घमसान
लोहू से लथपथ लोथें हों
स्वर्गारोहण के सोपान।

शंखनाद सुन कर जागृति का
कहिये कैसे सो जायें
आदेशों मे अनुप्राणित हो
बेसुध कैसे हो जायें
जय के इच्छुक उधर सो रहे
सैनिक-बल ले ढेरों का
उन्हें सदा के लिये सुला दें
कफन उढ़ा कर डेरों का।

जाने कब प्रभात आयेगा
लड़ने की बेला ले कर
बेचैनी बढ़ती जाती है
भिड़ने की आज्ञा दे कर
केवल आप तनिक 'हाँ' कर दें
बस, हथियार सँभालें हम
रात रात में शत्रु-रक्त से
मातृ-भूमि धो डालें हम।

गिरि, वन चुप हैं, उन्हें हमारा
युद्ध-घोष अब स्वीकृत है
तारों का भी मौन हमारे
कार्य-क्रम में सहमत है
केवल आप तनिक 'हाँ' कर दें
झट तलवार निकालें हम
रात रात में शत्रु-रक्त से
मातृ-भूमि धो डालें हम"।

कहते कहते यों वीरों के
दल उतावले उमड़ उठे
सीनों में प्रत्याक्रमणों के
घोर बवंडर घुमड़ उठे
पर चेतक के आरोही की
मुद्रा परम-विचित्र हुई
रोषित-आवरणों से हट कर
न्याय-धर्म का चित्र हुई

उच्छृंखलता के झोंकों में
संयम की दृढ़ता तोले
उद्वेगों पर अनुशासन कर
वे प्रशान्त हो कर बोले:—
"योद्धाओ! इस कार्य-क्रम में
मुझ से 'हाँ' हो चाह रहे
रण-स्वीकृति का अभ्यासी मुख
शब्द "नहीं" किस भाँति कहे?

पर, इस समय एक बन्धन है
कुछ सिद्धान्त अटल मेरे
"नहीं, नहीं" की बौछारों से
मेरी 'हाँ' को हैं घेरे
मान लिया उन का दल, गाजर
मूली-सा तुम काटोगे
रुण्ड-मुण्ड के झुण्ड जुटा कर
शयन-कुण्ड को पाटोगे।

किन्तु शूर बेसुध-सोते पर
छिप कर वार नहीं करते
कोई सज कर ही आवे तो
अस्वीकार नहीं करते
सोतों पर हथियार उठाना
दुरुपयोग है जागृति का
उन्हें सदा के लिये सुलाना
दुरुपयोग है जागृति का।

औरों को धोखा दे कर जो
विजय कमाई जायेगी
बुरी पराजय से वह होगी
काम न अपने आयेगी
आगामी-सन्तानों को वह
समय समय पर सालेगी
इतिहासों के पृष्ठों पर भी
काले धब्बे डालेगी।

वे सोये हैं तुम भी सोओ
अभी न रण-आह्वान करो
दूर दूर से चल कर आये
सो कर दूर थकान करो
प्रातःकाल सूर्य उदयाचल
से निकले किरणें ले कर
तुम भाले ले कर घाटी से
निकलो हुंकारें दे कर।

और शीघ्रता चाहो तो जब
रोष-भरी अरुणिम ऊषा
प्राची के अम्बर-पट की, कर
दे रुधिराप्लुत भूषा
तब तुम भी अपने मानस में
भर भर कर रण का अनुराग
माता की लाली रखने को
खूब खेलना खूनी-फाग।

मेरे शब्द उष्ण-शोणित बन
खौल रहे यदि नस नस में
धन्यवाद! पर आवेशों को
रक्खो अपने ही वश में
उन के वश में हो जाने से
विष घुल जायेगा रस में
उचित समय पर उन्हें काम में
ला कर वृद्धि करो यश में।

देखो जहाँ दिया जलता है
वहाँ शलभ भी जलते हैं
इस प्रकार दोनों ही अपने
अग्नि-मार्ग पर चलते हैं
शलभों का आवेश उबल कर
पल भर में जल जाता है
दीपक का जलना प्रभात तक
ज्योति लिए चल जाता है।

अच्छा जाओ मैं प्रभात तक
पहरा यहाँ लगाऊँगा
और तुम्हारे आवेशों को
अपने संग जगाऊँगा
मेरी अनिवार्याज्ञा से अब
सोओ बातें सभी विसार
मेरे सहित तुम्हारा पहरा
देंगे कोल-भील सरदार"।

शूर-शिरोमणि के शब्दों को
सादर शीश चढ़ा कर के
उद्वेलित उर में अनुशासन
के सद्भाव बढ़ा कर के
अरि को सदा थकाने वाले
चले थकावट खोने को
लोहे की पूजा के प्रेमी
चले विवश हो सोने को।

कोई हरी घास पर सोये
कोई कँकरीले थल पर
कोई चट्टानों पर सोये
कोई टीलों मे टिक कर
निद्रित हो कर विषम-स्थिति में
सब सम-भाव संजोते थे
सब की पलकों पर स्वदेश के
स्वरिंगम सपने सोते थे।

वास्तव में हीरों-रत्नों से
मूल्यवान थे वे पत्थर
स्वाभिमान के प्रेमी सोये
जिन को सिरहाने धर कर
भूमि-शयन पर अन्तः पुर की
सेज सुखी न्यौछावर थी
चन्द्र-हासिनी तलवारों पर
चन्द्र-मुखी न्यौछावर थी।

सौर्य-जगत में जाग रहे थे
जग मग हो उडु-गण प्यारे
शौर्य-जगत में जाग रहे थे
मां की आंखों के तारे
जहां तहां कोलों भीलों को
दे कर अभिरक्षण का भार
स्वयं महारागा ही सब के
बने हुये थे पहरेदार।

जीवन में वे दलित-जनों का
क्रन्दन सुन कर जागे थे
हूकें उठती देख उठे थे
सारे आलस त्यागे थे
कुटिलों की ऐंठें लख कर, थे
खड़े हुए ले अंगड़ाई
क्या अचरज! उन की आंखों में
यदि कुछ नींद नहीं आई।

घाटी की निस्तब्ध निशा में
वे निर्भीक टहलते थे
गुरुता मे गंभीरता से कुछ
धीरे धीरे चलते थे
मन्द-मन्द गति में पौरुष की
मन्दाकिनी उफनती थी
उन की वह वीरोचित आकृति-
अहा! देखते बनती थी।

सजग-दृगों से छलक रहा था
जागरूकता का परिचय
धैर्य तथा उद्योग दृष्टि में
पूर्ण-रूप से थे तन्मय
प्रण की अमिट-लीक सी भौंहें
लिये हुए प्रभुतायें थीं
बांके वीर छन्द लिखने को
हिन्दी की रेखायें थीं।

नोकीलेपन की प्रतीक-सी
मूँछें ऐंठी थीं अति बंक
उठी हुई ऐसे निशंक थीं
जैसे हों वृश्चिक के डंक
मेवाड़ी गौरव का द्योतक
शिर पर सोह रहा था छत्र
जिस की पावनता की उपमा
मिली न भूतल पर अन्यत्र।

माँ के फटे हुए अंचल को
बढ़ बढ़ कर सीनेवाला
केशरिया झंडे का सहचर
दायें कर में था भाला
बाईं ओर समर-चण्डी की
जिह्वा-सी लटकी तलवार
कटि में यम की सुदृढ़-दाढ़ सी
खौंसी थी अति विकट कटार।

पृष्ठ भाग पर ढाल सुशोभित
लिये चढ़ाई का उत्साह
वक्ष-स्थल पर लौह कवच में
वार झेलने की थी चाह
पहने पाद-त्राण अभय हो
चरण विचरते जाते थे
शूलों का मुंह कुचल कुचल कर
अपनी राह बनाते थे।

मानो उन की ही शिक्षायें
जुगनू भी अपनाते थे
तम की भीर चीर कर अपना
ज्योतित मार्ग बनाते थे
वहीं अँधेरे में चेतक की
चमक रही थीं दो आँखे
पशु-तन में देवत्व-भाव से
दमक रही थीं दो आँखें।

तनिक तनिक सी आहट पर वह
कान खड़े कर लेता था
चौकन्नेपन को कनौतियों
से चुनौतियां देता था
गणा पहरा लगा रहे थे
अन्धकार था अति गहरा
चौकस क्यों न वहां वह रहता
प्रहरी का घोड़ा ठहरा।

अपनी 'हिन हिन' की बोली पर
डाले था चुप का ताला
मानो बन के मौन-भाव का
बना हुआ था रखवाला
गिरि, बन, खग, मृग, सब नीरव थे
मुंह न किसी ने थे खोले
औरों की निद्रा हरने को
वही अकेला क्यों बोले।

केवल झिल्ली की झनकारें
शान्ति कर रही थीं कुछ भंग
नीरवता के सुप्त-हृदय में
उठा रही थीं गुप्त-तरंग
उसी समय अस्फुट-स्वर में कुछ
शब्द सुन पड़े कानों में
जो सम्भवतः सने हुए थे
स्वाभिमान की आनों में।

एक नव-युवक जिस की केवल
आयु अभी थी सत्रह साल
पत्थर से टिककर बैठे ही
बैठे सोया था उस काल
राणा का व्याख्यान सुना था
चाव भरा था मानस में
मातृ-भूमि की सेवाओं का
भाव भरा था मानस में।

स्वप्न-लोक में विचर रहा था
लेकर अपनी इच्छायें
पानीवाली धार ठाठ से
कटि में लटकी थी बायें
स्वाप्निल-आवेशों की धारा
में वह बहता जाता था
कभी कभी अस्फुट-स्वर में कुछ
यों ही कहता जाता था—

"कैहरिनी का शावक ..द्रोही...
पावक हूं...रह पाओगे...
कहना मानो...आगे...दिल्ली ..
निर्जन वन...मर जाओगे..."
सुने अचानक राणा ने ये
शब्द, निकट चुपके आये
कौतूहल से और मोद से
उसे देख कर पुलकाये।

उसे ज्ञात क्या खड़ा हुआ है
मेरे ढिंग कोई चुपचाप
वह तो सपने की दुनिया में
विचर रहा था अपने आप
जब तब आवेगों में आकर
ओंठ फड़क-से जाते थे
मुंठ पकड़ने को कृपाण की
हाथ भड़क-से जाते थे।

एकाएकी म्यान साधने
को सिमटा कुछ बायां हाथ
और धार बाहर करने को
पड़ा मूँठ पर दायां हाथ
किन्तु धार खुलने से पहले
आंख खुली बेचारे की
दशा हो गई ऐसी जैसी
होती है मन-मारे की।

उमँग लिये रह गया दाहिना
हाथ मूँठ पर पड़ा हुआ
राणा को सामने देख, वह
झटपट ही उठ खड़ा हुआ
कह न सका कुछ गुमसुम होकर
मौन रह गया बेचारा
आंखों से बह चली सकुच कर
अविरल आंसू की धारा।

धीरज देकर राणा बोले—
"वीर युवक! क्यों चौंक पड़े?
क्यों भयभीत हुए ऐसे जो
सोते से हो गये खड़े
कोई भय की बात नहीं मैं
स्वयं बना हूं पहरेदार
अपने अपने नाकों पर हैं
डटे हुए मेरे सरदार।

देखो, घाटी के अंचल में
शान्ति लिए सब सोते हैं
खोते हैं निश्चिन्त थकानें
शक्ति नवीन सँजोते हैं
तुम्हीं भड़ककर उठ बैठे हो
ऐसे व्यग्र न हो जाओ
एक पहर से अधिक रात है
निर्भयता से सो जाओ।

किन्तु अरे यह क्या? यह क्या? तुम
अपने आँसू पोंछ रहे!
साहस के दृढ़-भाव पिघल कर
क्यों आँखों की राह बहे!
किसी बनैले विष-कीड़े ने
क्या कुछ पीड़ा पहुँचाई
मैं भरसक उपचार करूँगा
हाल बताओ तो भाई!"

लेकर लम्बी साँस, सँभल कर
बोला—"महाराज की जय!
जब तक हैं मेवाड़-केशरी
तब तक किस का, कैसा भय?
वन का अथवा राज-भवन का
कोई भी विष-धर कीड़ा
स्वतन्त्रता के वन-वासी को
दे न सकेगा कुछ पीड़ा।

दया आप की बनी रहे, भय
मुझे न चौंका पाता है
सोने जगने के संगम पर
ऐसा हो ही जाता है
क्या बतलाऊँ, ठना हुआ था
नोक-झोंक का ढंग सारा
जग जाने पर निकल पड़ी फिर
विकल आंसुओं की धारा।

सुनता हूं "सोवे सो खोवे
जागे सो पावे', पर हाय!
मैं ने सो कर पाया, जग कर
खोया बैरी का समुदाय
यद्यपि वह सपना था फिर भी
था उस में सुन्दर संग्राम
सोना हो या जगना, मुझ को
केवल अरि के वध से काम"।

कहते कहते उसके स्वर पर
मौन-भावना सी छाई
किन्तु महाराणा के मन में
उत्सुकता-सी हो आई
बोले "युवक! बता तो दो वे
शत्रु कौन थे पामर-प्राण?
कैसी बात हुई उन से जो
तुम्हें खींचना पड़ा कृपाण"।

बोला "महाराज! जब सब को
आप दे रहे थे व्याख्यान
तब श्री मुख का शब्द शब्द मैं
सुनता रहा लगाये ध्यान
भाषण हुआ समाप्त, नींद की
छाई बेसुध-सी माया,
सपने में मैं ने अपने को
संग आप के ही पाया।

कहा आपने मुझसे 'जाओ
वन से लकड़ी ले आओ,
आगन्तुक-सैनिक भूखे हैं
इन को भोजन बनवाओ
मैं तुरन्त ही चला मुदित हो
सेवा-भाव भरे मन में
वहाँ मुझे दस यवन सिपाही
फिरते मिले गहन-वन में।

मुझे देख कर बढ़ कर बोले
"काफिर है पकड़ो, पकड़ो!
निकल न जाये, किसी तरह से
चंगुल में जकड़ो, जकड़ो!
अपनी शाहंशाही पर, बस
कर दो इस की कुर्बानी"
मैं ने डाटा, सावधान! अब
सुन न सकूंगा यह वाणी!

मैं हूँ कौन, जानते हो? मैं
केहरिनी का शावक हूं
वीर-भूमि के द्रोही-दल के
लिए भयानक पावक हूं
मातृ-भूमि में मेरे भाई
बन कर ही रह पाओगे
शासक बन कर नासमझी से
बिना मौत मर जाओगे।

कहना मानो, बढ़ो न आगे
यदि आगे को आओगे
दिल्ली के सैनिक होने का
गर्व मुझे दिखलाओगे
तो मेवाड़-शूरमा का भी
वार भयंकर पाओगे
निर्जन-वन में नासमझी से
बिना मौत मर जाओगे !

मैं हूं एक और तुम दस हो
इस की कुछ परवाह नहीं
हो एक ही, शून्य को ले कर
रोक सकोगे राह नहीं
तुम दस प्राण लिए दस हो, यदि
दस दस रहें एक पर प्राण
तो भी पल भर में हर लेगा
उन को मेरा एक कृपाण।

तुम मुझ को काफिर कहते हो
चेतो, चेतो ओ अनजान!
औरों को परतन्त्र बनाना
दुनिया में है कुफ्र महान
इतना सुन कर झपट पड़े वे
लेकर बहु-मत का अभिमान
मैंने भी तब वहां खींचना
चाहा अपना तीव्र कृपाण

ज्यों ही हाथ मूँठ पर आया
त्यों ही आँख खुली क्षण में
मैं बेबस आ गया यहीं पर
वे रह गये वहीं वन में
दृष्टि सामने डाली तो बस
खड़े हुये पाये श्रीमान
फिर तुरन्त उठ खड़ा हुआ मैं
करने को आदर-सम्मान"।

यों भोलेपन से, साहस से
सनी हुई बातें सुनकर
महाराज का सु-मन खिल गया
विपुल-रूप से पुलकन भर
सोचा "सत्रहवां बसन्त है
मुकुलित इसके जीवन में
ऐसा ही सुत सुरभि भरेगा
जननी के नन्दन-वन में"।

फिर विनोद में कहा "वीर-वर!
वही नींद फिर अपनाओ
उसी विपिन में उन्हीं सैनिकों
से जाकर फिर भिड़ जाओ
एक कृपाण छीन कर उनसे
रण कर लेना मन-माना
उन्हें सदा के लिये सुलाकर
बड़े सवेरे जग जाना।

समाप्त

शुद्धिपत्र

पृ०	पं०	अशु०	शु०
८	७	पूंजा	पुंजा
११	१५	को	की
१५	१३	विश्वास	विश्वस्त
२६	८	कबस	कबसे
३०	१२	रुधिराप्लुत	रुधिराप्लावित
४३	८	स्वारिर्गम	स्वर्गिम

कविवर श्री शिशुपालसिंह जी "शिशु"
की
अमर-रचनाएं

१. परीक्षा मूल्य २)
२. हल्दीघाटी की एक रात मूल्य ।।।)

छप रही है :—

१. अपने पथ पर

शीघ्र ही प्रकाशित होंगी:—

१. पूर्णिमा
२. नदी किनारे
३. दो चित्र
४. पद्मिनी
५. तीन आहुतियां
६. मुंज और भोज (महाकाव्य)